[2018] एस. सी. आर. 1147

बिहार राज्य और अन्य

बनाम्

बिहार राज्य भूमि विकास बैंक समिति

(सिविल अपील संख्या 7314/2018)

30 जुलाई, 2018

[आर. एफ. नरीमन और इंदु मल्होत्रा, न्यायमूर्तिगण]

मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996:

धारा 34 (5)-चाहे अनिवार्य हो या निदेशात्मक: अभिनिर्धारितजब किसी प्रावधान के परिणामस्वरूप अधिनियम के वास्तविक उद्देश्य और उद्देश्य को बढ़ावा दिए बिना, सामान्य असुविधा या अन्याय होता है, तो प्रावधान को निदेशात्मक घोषित किया जाना चाहिए -धारा 34 (5) एक प्रक्रियात्मक प्रावधान है, जिसका उल्लंघन करने से कोई परिणाम नहीं निकलता है-इस तरह के प्रावधान का अनिवार्य रूप से अर्थ लगाने से न्याय की प्रगति विफल हो जाएगी क्योंकि यह निष्पक्षता के तत्व को दफन करके न्याय की प्रक्रिया को बाधित करने का परिणाम प्रदान करेगा-विधान की व्याख्या।

निर्णय/आदेशः

पहले के फैसले को उन कारणों को प्रभावित किए बिना खारिज नहीं किया जा सकता जिन पर वह आधारित है।

अपील को अनुमति देते हुए, न्यायालय

अभिनिर्धारित:1.1 मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 (5) एक प्रक्रियात्मक प्रावधान है, जिसके उल्लंघन का कोई परिणाम नहीं होता है।प्रावधान के

पीछे का उद्देश्य धारा 34 के तहत आवेदनों का शीघ्रता से निपटान करना है। प्रक्रिया के सभी नियम न्याय में सहायक होते हैं और यदि न्याय के उद्देश्य को आगे बढ़ाने में यह स्पष्ट किया जाता है कि इस तरह के प्रावधान को निर्देशिका के रूप में माना जाना चाहिए, तो ऐसा ही होगा। ऐसा अर्थ लगाने के लिए अनिवार्य होने के नाते प्रावधान न्याय की प्रगति को विफल कर देगा क्योंकि यह धारा 34 (5) की अपेक्षाओं को पूरा किए बिना दायर आवेदन को खारिज करने का परिणाम प्रदान करेगा, जिससे निष्पक्षता के तत्व को दफन करके न्याय की प्रक्रिया में बाधा आएगी। [कंडिकाएँ 20 और 22] [1163-एफ-जी; 1165-ए-बी]

1.2 सुविधा और न्याय के विचार सर्वोपरि है; और यदि अधिनियम के वास्तविक उद्देश्य और प्रयोजन को बढ़ावा दिए बिना सामान्य असुविधा या अन्याय होता है तो, प्रावधान को निर्देशिका घोषित किया जाना चाहिए। [पारा 19] [1163-ई]

1.3 धारा 34 (1) में एकमात्र अपेक्षा यह है कि अधिनिर्णय को अपास्त करने के लिए आवेदन उप-धाराएँ (2) और (3) के अनुसार होना चाहिए। यह, फिर से, इस तथ्य के लिए एक महत्वपूर्ण संकेतक है कि विधायी रूप से भी, धारा 34 की उप-धारा (5)। एक पूर्ववर्ती शर्त नहीं है, बल्कि एक प्रक्रियात्मक प्रावधान है जो धारा 34 के तहत आवेदनों पर निर्णय लेने में देरी को कम करने का प्रयास करती है। [पारा 23] [1165-डी-ई]

1.4 यह धारा 29 ए से यह स्पष्ट हैकि धारा 34 (5) और (6) के विपरीत, यदि कोई अधिनिर्णय निहित निर्धारित या विस्तारित अवधि से परे दिया जाता है, तो मध्यस्थ के आदेश को समाप्त करने के परिणाम स्पष्ट रूप से प्रदान किए जाते है। यह प्रावधान धारा 34 (5) और (6) के बिल्कुल विपरीत है, जहां यदि धारा 34 के तहत आवेदन पर निर्णय लेने की अवधि बीत चुकी है, तो कोई परिणाम प्रदान नहीं किया जाता है।यह एक और संकेतक है कि एक ही संशोधन अधिनियम, जब उसने विभिन्न स्थितियों में समय अवधि प्रदान की थी, तो उसने अलग-अलग परिणामों के इरादे से ऐसा किया था। [पारा 24] [1166-डी-ई]

1.5 अतः यह सही नहीं है कि धारा 34 (5) धारा 34 (6) से स्वतंत्र है और अपने आप में कानून की एक अनिवार्य आवश्यकता है। धारा 34 की उप-धारा (6)उस तारीख को संदर्भित करता है जिस पर उप-धारा (5) में निर्दिष्ट सूचना दूसरे पक्ष को दी जाती है। यही कारण है कि आवेदन दाखिल करने की पूर्व तिथि को धारा 34 (6) में निर्दिष्ट एक वर्ष की अवधि का प्रारंभिक बिंदु माना जाता है। भले ही उप-धारा (5) को उप-धारा (6) से स्वतंत्र प्रावधान माना जाए, लेकिन कानून में वही परिणाम परिणाम है- अर्थात्, यदि ऐसी पूर्व सूचना जारी नहीं की जाती है तो कोई परिणाम प्रदान नहीं किया जाता है। [पारा 25] [1166-एफ. जी.]

1.6 प्रत्येक न्यायालय का यह प्रयास होगा कि जहाँ धारा 34 का आवेदन दायर किया गया है, आवेदक द्वारा या न्यायालय द्वारा, जैसा भी मामला हो, विरोधी पक्ष को नोटिस की सेवा की तारीख से एक वर्ष की समय सीमा तक बने रहने का प्रयास किया जाएगा।यदि न्यायालय धारा 34 (3) में उल्लिखित अवधि बीत जाने के बाद नोटिस जारी करती है, तो प्रत्येक न्यायालय उक्त आवेदन दाखिल करने की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर धारा 34 के आवेदन का निपटारा करने का प्रयास करेगी, जैसा कि उच्च न्यायालय अधिनियम, 2015 के वाणिज्यिक न्यायालयों, वाणिज्यिक प्रभाग और वाणिज्यिक अपीलीय प्रभाग की धारा 14 में प्रदान किया गया है। यह 2015 के संशोधन अधिनियम की धारा 13 (6) को जोड़कर हासिल किए जाने वाले उद्देश्य को प्रभावी बनाएगा। [पारा 27] [1168-बी-सी]

1.7 वाणिज्यिक न्यायालय, वाणिज्यिक प्रभाग और उच्च न्यायालय अधिनियम, 2015 के वाणिज्यिक अपीलीय प्रभाग की धारा 14 के साथ पठित धारा 10 के अंतर्गत आने वाले मामलों में, वाणिज्यिक अपीलीय प्रभाग निर्धारित छह महीने के भीतर उसके समक्ष दायर अपीलों का निपटारा करने का प्रयास करेगा। जिन अपीलों को इस तरह से शामिल नहीं किया गया है, उनका भी जल्द से जल्द निपटान किया जाएगा, अधिमानतः उस तारीख से एक साल के भीतर जिस दिन अपील दायर की गई है। [पारा 28] [1168-डी, ई]

कैलाश बनाम नन्हकू और अन्य (2005) 4 एससीसी 480:[2005] 3 एस. सी. आर. 289; टॉपलाइन शूज़ बनाम कॉर्पोरेशन बैंक (2002) 6 एस. सी. सी. 33:[2002] 3 एससीआर 1167; सलेम अधिवक्ता बार एसोसिएशन बनाम भारत संघ (2005) 6 एससीसी 344:[2005] 1 पूरक एस. सी. आर. 929; न्यू इंडिया एस्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम हिल्ली मल्टीपर्पस कोल्ड स्टोरेज प्राइवेट लिमिटेड (2015) 16 एससीसी 20; जे. जे. मर्चेंट (डॉ.) बनाम श्रीनाथ चतुर्वेदी (2002) 6 एससीसी 635:[2002] 1 पूरक एससीआर 469; राज्य बनाम एन. एस. ज्ञानेश्वरन (2013) 3 एस. सी. सी. 594; बिखराज जयपुरिया बनाम.भारत संघ [1962] 2 एस. सी. आर. 880-पर निर्भर था।

बिहारी चौधरी और अन्य बनामबिहार राज्य और अन्य, (1984) 2 एस. सी. सी. 627:[1984] 3 एस. सी. आर. 309 से-संदर्भित।

2. पहले के फैसले को उन कारणों को प्रभावित किए बिना खारिज नहीं किया जा सकता है जिन पर वह आधारित है।[पारा 17] [1161-एच; 1162-ए]

क़ानूनों की व्याख्या पर मैक्सवेल 10 वीं संस्करण पृष्ठ 376-संदर्भित।

<u>वाद कानून संदर्भ</u>

[2005] 3 एससीआर 289	पारा 4	पर निर्भर
[2002] 3 एस. सी. आर. 1167	पारा 11	पर निर्भर
[2005] 1 पूरक एससीआर 929	पारा 13	पर निर्भर
(2015) 16 एससीसी 20	पारा 14	पर निर्भर
[2002] 1 पूरक।एससीआर 469	पारा 14	पर निर्भर
(2013) 3 एस. सी. सी. 594	पारा 18	पर निर्भर

[1962 [2 एससीआर 880]	पारा 19	पर निर्भर
[1984] 3 एससीआर 309	पारा 21	पर संदर्भित

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील संख्या 7314/2018

पत्र पेटेंट अपील संख्या 1841/2016 में उच्च न्यायालय, पटना के न्यायाधिकार और आदेश दिनांक 28.10.2016 से।

नागेंद्र राय, पराग पी. त्रिपाठी, वरिष्ठ अधिवक्तागण, गोपाल सिंह, मनीष कुमार, सुश्री अपराजिता सूद, जयंत कुमार मेहता, राजेश के. सिंह, राजेश प्रसाद चौधरी, सुवेनी भगत, सुश्री मिशिका बाजपेयी, उपस्थित पक्षों के अधिवक्तागण।

न्यायालय का निर्णय आर. एफ. नरीमन, न्यायमूर्ति द्वारा सुनाया गया

निर्णय

1. अनुमति प्रदान की गई।

2. इस अपील में उठाया गया प्रश्न इस बात से संबंधित है कि क्या मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 (5), जो 2016 के संशोधन अधिनियम 3 द्वारा (23 अक्टूबर, 2015 से) अंतःस्थापित की गई है, आज्ञापक है या निर्देशिका है।

3. वर्तमान अपील एक मध्यस्थता कार्यवाही से उत्पन्न होती है जो 24.05.2015 को शुरू हुई थी। एक मध्यस्थता पंचाट 06.01.2016 को दिया गया था। उक्त अधिनिर्णय को चुनौती देने वाली एक धारा 34 याचिका पटना उच्च न्यायालय के समक्ष 05.04.2016 को दायर की गई थी, जिसमें न्यायालय द्वारा 18.07.2016 को विपक्षी पक्ष को नोटिस जारी किया गया था। आने वाले समय के बावजूद धारा 34 (5) के प्रभावी होने के बावजुद, पक्षकारों के बीच सामान्य आधार यह है कि उक्त धारा के संदर्भ में दूसरे पक्षकार को कोई पूर्व सूचना जारी नहीं की गई थी, न ही धारा 34 के तहत आवेदन के साथ एक हलफनामा दिया गया था जो उक्त उपधारा द्वारा आवश्यक था।

4. पटना उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने दिनांक 06.09.2016 के एक निर्णय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि कैलाश बनाम नन्हकू और अन्य, (2005) 4 एससीसी 480 में हमारे निर्णय के बाद धारा 34 (5) में निहित प्रावधान केवल निर्देशिका थी।खंडपीठ एक लेटर्स पेटेंट अपील ने 28.10.2016 को विधि आयोग की रिपोर्ट का उल्लेख करते हुए, जिसके द्वारा यह निर्णय दिया गया था, यह स्पष्ट किया कि धारा 34 (5) की अनिवार्य भाषा, अपने उद्देश्य के साथ, यह स्पष्ट करती है कि उप-धारा धारा 34 के तहत उचित आवेदन दाखिल करने के लिए एक पूर्व शर्त थी, और, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 80 के तहत जारी एक नोटिस की समानता पर, सरकार के खिलाफ वाद दायर करने की पूर्व शर्त होने के कारण, खंडपीठ ने निर्णय दिया कि चूंकि इस अनिवार्य आवश्यकता का पालन नहीं किया गया था, और चूंकि 120 दिनों की अवधि समाप्त हो गई थी, इसलिए धारा 34 आवेदन को खारिज कर दिया जाना चाहिए था। अंत में, इसने अपील को स्वीकार कर लिया और विद्वत एकल न्यायाधीश के फैसले को रद्द कर दिया।

5. अपीलकर्ताओं की ओर से पेश हुए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री नागेंद्र राय ने तर्क दिया है कि लेटर्स पेटेंट अपील स्वयं चलाने योग्य नहीं थी। उन्होंने आगे तर्क दिया कि किसी भी स्थिति में, धारा 34 (5) और (6) एक संयुक्त स्कीम का भाग है, जिसका उद्देश्य यह है कि धारा 34 के अधीन आवेदन का निपटान एक वर्ष के भीतर शीघ्रता से किया जाए। उन्होंने इंगित किया कि यदि इस तरह के आवेदन का निपटान एक वर्ष की अवधि के भीतर नहीं किया जाता है, तो कोई परिणाम प्रदान नहीं किया जाता है, उपरोक्त प्रावधान केवल निर्देशिका हैं, इसमें उपयोग की जाने वाली भाषा की अनिवार्य प्रकृति के बावजूद। उन्होंने यह भी कहा कि प्रक्रियागत प्रावधानों का इस तरह से अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि न्याय को कुचला जा सके। इस उद्देश्य के लिए, उन्होंने इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों का उल्लेख किया और उन पर भरोसा किया।

6. श्री पराग पी त्रिपाठी, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने प्रत्यर्थी की ओर से पेश होते हुए उच्च न्यायालय के निर्णय का बचाव किया, जो धारा 34 (5) एक अनिवार्य प्रावधान होने के साथ-साथ रखरखाव पर भी था। विद्वत वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, इस तथ्य के

बावजूद कि धारा ३४ (६) की समयावधि समाप्त हो जाने पर कोई परिणाम प्रदान नहीं किया गया है, फिर भी, धारा ३४ (५) में वर्णित पूर्व शर्त का पालन किए बिना धारा ३४ के तहत दायर किया गया आवेदन एक ऐसा आवेदन है जो कानून में अशुद्ध है.उन्होंने आगे तर्क दिया कि परिणाम, इसलिए, धारा 34 की उप-धारा (6) से नहीं, बल्कि इसकी उप-धारा (3) से होता है, जिसके तहत, इस तरह के आवेदन पर विचार नहीं किया जा सकता है यदि यह निर्धारित अवधि और/या धारा 34 (3) में उल्लिखित विस्तारित अवधि से परे है.उन्होंने विधि आयोग की उस रिपोर्ट पर भरोसा किया जिसके आधार पर 2015 में संशोधन किया गया और साथ ही धारा 34(5) के भाषा की अनिवार्य प्रकृति का भी उल्लेख किया। इसके अतिरिक्त, विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता के अनुसार, अधिकांश उच्च न्यायालयों ने इस उपबंध का अनिवार्य रूप से अर्थान्वयन किए जाने के पक्ष में विनिश्चय किया है, जो एकमात्र विसंगत नोट है जिसे बम्बई उच्च न्यायालय द्वारा अभिखंडित किया जा रहा है।

7. धारा 34 (5) और (6) निम्नलिखित रूप में दी गई हैः

"34. माध्यस्थम् पंचाट को अपास्त करने के लिए आवेदन-

xxx xxx xxx

(5) इस धारा के अधीन आवेदन पक्षकार द्वारा दूसरे पक्षकार को पूर्व सूचना जारी करने के पश्चात् ही फाइल किया जाएगा और ऐसे आवेदन के साथ आवेदक द्वारा उक्त अपेक्षा के अनुपालन का पृष्ठांकन करने वाला शपथपत्र भी संलग्न किया जाएगा।

(6) इस धारा के अधीन आवेदन का निपटान उस तारीख से, जिसको उपधारा (5) में निर्दिष्ट सूचना दूसरे पक्षकार को तामील की जाती है, एक वर्ष की अवधि के भीतर शीघ्रता से और किसी भी दशा में किया जाएगा।"

8. इसमें कोई संदेह नहीं है कि धारा 34 की भाषा श्री त्रिपाठी के तर्क के समर्थन में खुद को प्रस्तुत करती है, क्योंकि उपयोग किए गए पद "केवल बाद" और "पूर्व सूचना" "के साथ इस तरह के आवेदन के साथ "अनुपालन का समर्थन करने वाला एक हलफनामा" होगा।

9. विधि आयोग की 246 वीं रिपोर्ट, जिसमें पूर्वोक्त उपबंध पुरःस्थापित किया गया है, में भी दिलचस्प पठन किया गया है, जो इसमें नीचे दिया गया हैः

> "3. माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (इसमें इसके पश्चात् अधिनियम) अन्तर्राष्ट्रीय वाणिज्यिक माध्यस्थम्, 1985 और अनसाइट्रल सुलह नियम, 1980 पर अनसाइट्रल मांडल कानून पर आधारित है यह अधिनियम अब लगभग दो दशकों से प्रवृत्त है और इस अवधि में, यद्यपि माध्यस्थम् तेजी से मुकदमेबाजी के विकल्प के रूप में तेजी से उभर कर सामने आया है, यह उच्च लागत और विलंब सहित विभिन्न समस्याओं से ग्रस्त हो गया है, जो इसे पहले की व्यवस्था से बेहतर नहीं बनाता है जिसका आशय किसी को प्रतिस्थापित करना या मुकदमेबाजी को, जिसके लिए यह एक विकल्प प्रदान करना चाहता है। मध्यस्थता प्रक्रिया में विलंब अंतर्निहित है, और मध्यस्थता की लागत जबरदस्त हो सकती है। फिर भी न्यायालय कुछ मुद्दों को अंतिम रूप देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जो मध्यस्थता के पहले, बाद और यहां तक कि मध्यस्थता के दौरान भी उत्पन्न होते हैं, फिर भी अदालतों के समक्ष लंबित मामलों की बड़ी सूची में मध्यस्थता से संबंधित मुकदमेबाजी के फंसने का गंभीर खतरा है। अधिनिर्णय के पश्चात्, धारा 34 के अधीन चुनौती अधिनिर्णय को निष्पादन योग्य नहीं बनाती है और ऐसी याचिकाएं कई वर्षों से लंबित हैं।त्वरित वैकल्पिक विवाद समाधान का उद्देश्य अक्सर निराश हो जाता है।

4. अतः, माध्यस्थम् प्रक्रिया में बार-बार उठने वाली इन समस्याओं से निपटने के लिए अधिनियम के कतिपय उपबंधों को पुनरीक्षित करने की तत्काल आवश्यकता है। इस अध्याय का उद्देश्य आयोग की रिपोर्ट में सुझाए गए परिवर्तनों की आधारशिला रखना है। सुझाए गए संशोधन भारत में मध्यस्थता की वर्तमान व्यवस्था को प्रभावित करने वाले विभिन्न मुद्दों को संबोधित करते हैं और इसलिए, संशोधन करने से पहले, उन समस्याओं की पहचान करना उपयोगी होगा जिनका समाधान सुझाए गए संशोधनों का उद्देश्य है और जिस संदर्भ में उक्त समस्याएं उत्पन्न होती हैं और इसलिए वह संदर्भ जिसमें उनके समाधान देखे जाने चाहिए।

xxx xxx xxx

25. इसी प्रकार, आयोग ने पाया है कि धारा 34 और 48 के अधीन माध्यस्थम् पंचाटों की चुनौतियां समान रूप से कई वर्षों से लंबित हैं। इस संदर्भ में, आयोग ने धारा 34 (5) और 48 (4) को जोड़ने का प्रस्ताव किया है जिसमें यह अपेक्षित होगा कि उन धाराओं के अधीन आवेदन का निपटान सूचना की तामील की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर शीघ्रता से और किसी भी दशा में किया जाएगा। अधिनियम की धारा 48 के तहत आवेदनों के मामले में, आयोग ने धारा 48 (3) के तहत एक समय सीमा प्रदान की है, जो धारा 34 (3) में निर्धारित समय सीमाओं को प्रतिबिंबित करती है, और इसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि पक्षकार इस धारा के तहत अपना समाधान गंभीरता से हासिल करते है एवं शीघ्रता से न्यायिक मंच से संपर्क करते है न कि विचारोपरांत के माध्यम से..........."

10. इसमें कोई संदेह नहीं है कि धारा 34 (5) और (6) का उद्देश्य, जैसा कि विधि आयोग द्वारा कहा गया है, यह अपेक्षा है कि धारा 34 के अधीन आवेदन का निपटान नोटिस की तामील की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर किया जाए। हमें

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि यदि धारा 34 (6) के अधीन एक वर्ष की समय सीमा का पालन नहीं किया जाता है, उसका कोई परिणाम नही दिया गया हो, तो क्या यह धारा 34 (5) का अनिवार्य रूप से अर्थ लगाने के लिए पर्याप्त है, इसकी जांच करनी होगी। इस न्यायालय के कुछ निर्णय इस बात पर काफी प्रकाश डालते हैं कि इसी प्रकार के प्रावधानो को प्रकृति में केवल निर्देशिका के रूप में माना जा रहा है।

11. इस प्रकार, टॉपलाइन शूज बनाम कारपोरेशन बैंक, (2002) 6 एससीसी 33, मामले में, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 13 (2) (ए) में कहा गया है कि विरोधी पक्ष द्वारा 30 दिनों की अवधि के भीतर या ऐसी विस्तारित अवधि जो 15 दिनों से अधिक न हो, के भीतर जवाब दाखिल किया जा सकता है, जिसे जिला अदालत द्वारा मंजूरी दी जा सकती है।इस न्यायालय ने उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के उद्देश्यों और कारणों के कथन का उल्लेख किया, जो मध्यस्थता और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 (5) और (6) में किए गए संशोधन द्वारा प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य के समान हैः

> "8. उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के उद्देश्यों और कारणों का कथन इंगित करता है कि इसे उपभोक्ताओं के अधिकारों और हितों को बढ़ावा देने और उनकी रक्षा करने और उनकी शिकायतों का उन्हें त्वरित और सरल निवारण प्रदान करने के लिए अधिनियमित किया गया है। इसलिए इस उद्देश्य के लिए विभिन्न स्तरों पर अर्द्ध-न्यायिक तंत्र स्थापित की गई है। इन अर्ध-न्यायिक निकायों को उद्देश्यों और कारणों के कथन के खंड 4 के अनुसार प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करना है, जो निम्नानुसार हैः
>
> > 4. त्वरित और सरल समाधान प्रदान करना उपभोक्ता विवादों को निपटाने के लिए जिला, राज्य और केंद्रीय स्तरों पर एक अर्ध-न्यायिक तंत्र स्थापित करने की मांग की गई है। ये अर्ध-न्यायिक निकाय प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का पालन करेगा और विशेष प्रकृति की राहत देने और जहां भी

> उचित हो, उपभोक्ताओं को मुआवजा देने का अधिकार दिया गया है। अर्ध-न्यायिक निकायों द्वारा दिए गए आदेशों का अनुपालन न करने पर दंड का भी प्रावधान किया गया है।"
>
> (मूल में जोर)

इस प्रकार, उत्तर दाखिल करने के लिए समय-सीमा प्रदान करने का आशय वास्तव में ऐसे मामलों की सुनवाई में तेजी लाना और उत्तर दाखिल करने के बहाने कार्यवाही में देरी करने के लिए अनावश्यक स्थगनों से बचना है। तथापि, जैसा कि प्रावधान बनाया गया है, यह इंगित नहीं करता है कि यह प्रकृति में आज्ञापक है। यदि विस्तारित समय 15 दिन से अधिक होता है, तो इसके लिए कोई दंडात्मक परिणाम निर्धारित नहीं किए जाते हैं। समय विस्तार की अवधि जो 15 दिन से अधिक न हो, किसी भी प्रकार की सीमा निर्धारित नहीं करती है। यह प्रावधान निदेशिका की प्रकृति का प्रतीत होता है जिसे उपभोक्ता मंचों द्वारा उनके समक्ष कार्यवाहियों में सामान्यतः लागू किया जाना चाहिए।हम अपीलार्थी द्वारा व्यक्तिगत रूप से दिए गए निवेदन में बल नहीं पाते हैं, कि किसी भी स्थिति में, प्रत्यर्थी का उत्तर 45 दिनों की अवधि के बाद रिकॉर्ड पर नहीं लिया जा सकता है। प्रावधान ऐसे विवादों के शीघ्र निपटान के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए प्रक्रिया के माध्यम से अधिक है। यह मजबूत शब्दों में वांछनीयता की अभिव्यक्ति है। लेकिन यह शिकायतकर्ता के पक्ष में किसी भी प्रकार का मूल अधिकार सृजित करने से वंचित करता है जिसके कारण प्रत्यर्थी को किसी भी परिस्थिति में अपना पक्ष बचाव में रखने से रोका जा सकता है। यह फोरम या आयोग का दायित्व है कि वह अधिनियम के प्रावधानों के साथ-साथ सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करे, जिसमें जवाब दाखिल करने के लिए समय-सीमा प्रदान की गई है, एक दिशा-निर्देश के रूप में, और फिर अपने विवेक का उपयोग करे, जो

> न्याय के उद्देश्यों को पूरा कर सके और त्वरित निपटान के उद्देश्य को प्राप्त कर सके ऐसे मामलों में प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को भी ध्यान में रखा जाएगा।फोरम अधिनियम की धारा 13 (2) (ए) को देखते हुए 15 दिन से अधिक समय देने से इनकार कर सकता है, लेकिन 15 दिन की अवधि से अधिक समय देने से आदेश में कोई घातक अवैधता नहीं होगी।"

न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया:

> "11. हमने पहले ही ध्यान दिया है कि धारा 13 की उपधारा (2) के खंड (क) के अधीन अंतर्विष्ट उपबंध प्रक्रियात्मक प्रकृति के हैं। यह भी स्पष्ट है कि अधिनियमिति के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए, कि ऐसे मामलों का शीघ्र निपटान हो सके, यह प्रावधान किया गया है कि जवाब 30 दिनों के भीतर दाखिल किया जाना चाहिए और समय सीमा 15 दिनों से अधिक नहीं हो सकती है। इस प्रावधान में यह परिकल्पना की गई है कि विरोधी पक्ष के जवाब दाखिल किए बिना कार्यवाही बहुत लंबे समय तक नहीं चल सकती है। तथापि, यदि समय सीमा 15 दिन से अधिक हो जाती है तो कोई दंड नहीं दिया गया है। इसलिए, यह नहीं कहा जा सकता है कि अपीलार्थी के पक्ष में कोई मूल अधिकार प्रोद्भूत हुआ या कुल मिलाकर 45 दिनों के बाद भी विस्तारित समय के भीतर उत्तर दाखिल करने में किसी भी प्रकार की सीमा का वर्जन था। उत्तर को अस्वीकार करना आवश्यक नहीं है। मामले के सभी तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखा जाना चाहिए। अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों के कथन में यह भी प्रावधान है कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को भी ध्यान में रखना होगा।"

12. कैलाश (उपर्युक्त) में, इस न्यायालय को इस प्रश्न का सामना करना पड़ा कि क्या, 2002 के संशोधन अधिनियम द्वारा सीपीसी के आदेश 8 नियम 1 के संशोधन के

बाद, उक्त प्रावधान को अनिवार्य माना जाना चाहिए। यह प्रावधान निर्णय के पैराग्राफ 26 में इस प्रकार दिया गया हैः

> "26. आदेश 8 के नियम 1 का पाठ, जैसा वह अब है, निम्नानुसार हैः
>
> "1. लिखित बयान-प्रतिवादी, सम्मन की तामील की तारीख से तीस दिनों के भीतर, अपनी प्रतिरक्षा का लिखित कथन प्रस्तुत करेगाः
>
> परन्तु जहां प्रतिवादी तीस दिन की उक्त अवधि के भीतर लिखित कथन फाइल करने में असफल रहता है, वहां उसे ऐसे अन्य दिन, जो न्यायालय द्वारा विनिर्दिष्ट किया जाए, लिखित में दर्ज किए जाने वाले कारणों से फाइल करने की अनुज्ञा दी जाएगी, किंतु जो समन की तामील की तारीख से नब्बे दिन से अधिक नहीं होगा।"

एक अनुदेशात्मक निर्णय में, इस न्यायालय ने कहाः

> "27. तीन बातें स्पष्ट हैं। सर्वप्रथम, जिस भाषा में आदेश 8 के नियम 1 का प्रारूप तैयार किया गया है, उसके सावधानीपूर्वक पठन से पता चलता है कि यह प्रतिवादी पर सम्मन की तामील की तारीख से 30 दिनों के भीतर और 90 दिनों के भीतर आने वाले विस्तारित समय के भीतर लिखित कथन फाइल करने की बाध्यता डालता है। यह प्रावधान न्यायालय की शक्ति से संबंधित नहीं है और यह विनिर्दिष्ट रूप से न्यायालय की लिखित कथन को अभिलेख पर लेने की शक्ति को भी नहीं छीनता है, यद्यपि यह उपबंधित समय से परे फाइल किया गया है। दूसरा, आदेश 8 के नियम 1 में निहित प्रावधान की प्रकृति प्रक्रियात्मक है। यह मूल कानून का हिस्सा नहीं है। तीसरा, वर्तमान स्वरूप में आदेश 8 नियम 1 को प्रतिस्थापित करने के पीछे का उद्देश्य विलंबकारी युक्तियों को अपनाने वाले बेईमान प्रतिवादियों की शरारत को रोकना, त्वरित राहत के लिए न्यायालय में आने वाले वादियों और

याचिकाकर्ताओं के लिए बहुत अधिक विलंब करना और स्थगन के लिए बार-बार प्रार्थना करने वाले न्यायालय की गंभीर असुविधा को रोकना है। इसका उद्देश्य सुनवाई में तेजी लाना है न कि इसमें बाधा डालना। न्याय की प्रक्रिया में तेजी लाई जा सकती है और उसमें तेजी से की जा सकती है, लेकिन न्याय के बुनियादी तत्व की निष्पक्षता को दबाने की अनुमति नहीं दी जा सकती।

xxx xxx xxx

30. यह भी ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि आदेश 8 के साथ संलग्न परन्तुक के अधीन न्यायालय की शक्ति 'नब्बे दिन से अधिक नहीं होगी' शब्दों द्वारा सीमित है, किंतु समय के विस्तार न होने से उत्पन्न होने वाले परिणामों के लिए विनिर्दिष्ट रूप से प्रदान नहीं किया गया है, यद्यपि उन्हें आवश्यक निहितार्थ के साथ पढ़ा जा सकता है। केवल इसलिए कि कानून का एक प्रावधान एक नकारात्मक भाषा में लिखा गया है जिसमें अनिवार्य चरित्र निहित है, यह अपवाद के बिना नहीं है। न्यायालय, जब प्रावधान की प्रकृति की व्याख्या करने के लिए कहा जाए तो, उस संपूर्ण संदर्भ को ध्यान में रखते हुए, जिसमें प्रावधान अधिनियमित किया गया था, यह अभिनिर्धारित कर सकते हैं कि यद्यपि नकारात्मक रूप से शब्दों में वर्णित एक निर्देशिका होना चाहिए।

xxx xxx xxx

35. हमारे सामने निर्णय के लिए उत्पन्न होने वाले मुद्दे पर सीधा प्रभाव डालने वाले दो निर्णयों को हमारे संज्ञान में लाया गया है, दोनों में से एक-एक पक्ष के विद्वत वकील द्वारा। अपीलकर्ता के लिए विद्वत वरिष्ठ वकील ने प्रस्तुत किया कि टॉपलाइन शूज लिमिटेड बनाम भारत संघ, एआईआर 1995 एससी 4665 में। कारपोरेशन बैंक [(2002) 6 एससीसी 33 में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 13 में

निहित एक पैरा मटेरिया प्रावधान न्यायालय के विचार के लिए आया। इस प्रावधान के तहत शिकायत करने वाले विरोधी पक्ष को 30 दिन की अवधि के भीतर या ऐसी विस्तारित अवधि के भीतर, जो जिला मंच द्वारा मंजूर की जाए, मामले का अपना पक्ष देने की आवश्यकता है। न्यायालय ने उद्देश्यों और कारणों के कथन और उत्तर दाखिल करने के लिए समय-सीमा प्रदान करने के पीछे विधायी आशय को ध्यान में रखा और अभिनिर्धारित कियाः (i) विरचित किया गया उपबंध प्रकृति में आज्ञापक नहीं था क्योंकि कोई दांडिक परिणाम विहित नहीं किए गए हैं यदि विस्तारित समय 15 दिन से अधिक है, और (ii) यह कि प्रावधान प्रकृति में निर्देशिका था और इसका अर्थ नहीं लगाया जा सकता था कि किसी भी स्थिति में नहीं प्रतिवादी के उत्तर को 45 दिनो की अवधि के बाद रिकार्ड में लिया जा सकता है।

xxx xxx xxx

46. हम अपने निष्कर्षों को संक्षेप में और संक्षेप में निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत करते हैंः

> xxx xxx xxx
>
> (iv) सीपीसी के आदेश 8 के नियम 1 के तहत लिखित बयान दाखिल करने के लिए समय सारणी उपलब्ध कराने का उद्देश्य सुनवाई में बाधा डालना नहीं बल्कि तेजी लाना है। इस प्रावधान में प्रतिवादी पर विकलांगता का उल्लेख किया गया है। यह समय बढ़ाने के लिए न्यायालय की शक्ति पर प्रतिबंध नहीं लगाता है। हालांकि सीपीसी के आदेश 8 के नियम 1 के परंतुक की भाषा नकारात्मक रूप में दी गई है, लेकिन इसमें अनुपालन न करने से उत्पन्न होने वाले किसी दंडात्मक परिणाम को निर्दिष्ट नहीं किया गया है। यह

> प्रावधान प्रक्रियात्मक कानून के दायरे में आता है, इसलिए इसे निर्देशिका में रखना होगा, न कि अनिवार्य। न्यायालय की शक्ति को लिखित कथन दाखिल करने के लिए समय बढ़ाने के लिए आदेश 8 के नियम 1 सीपीसी द्वारा प्रदान की गई समय-सीमा पूरी तरह से समाप्त नहीं की जाती है।
>
> xxx xxx xxx"

13. सलेम एडवोकेट बार एसोसिएशन बनाम भारत संघ, (2005) 6 एससीसी 344, पृ. पैराग्राफ 20, में इस न्यायालय की टिप्पणियॉ समान प्रभाववाली है जो यहां नीचे पुनः प्रस्तुत किया गया हैः

> "20. आदेश 8 के नियम 1 में "होगा" शब्द का उपयोग स्वयं यह अवधारित करने के लिए निश्चायक नहीं है कि क्या प्रावधान आज्ञापक है या निर्देशिका है। हमें उस उद्देश्य का पता लगाना है जो इस प्रावधान द्वारा पूरा किया जाना आवश्यक है और इसके डिजाइन और संदर्भ जिसमें यह अधिनियमित किया गया है। शब्द "होगा" का उपयोग सामान्यतः की आज्ञापक प्रकृति का संकेतक है किंतु उस संदर्भ को ध्यान में रखते हुए जिसमें इसका उपयोग किया गया है या विधान के आशय को ध्यान में रखते हुए इसका अर्थ निर्देशिका के रूप में लगाया जा सकता है। प्रश्नगत नियम को न्याय के उद्देश्य को आगे बढ़ाना है न कि उसे परास्त करना है। प्रक्रिया के नियम न्याय के उद्देश्य को आगे बढ़ाने के लिए बनाए जाते हैं, इसे परास्त करने के लिए नहीं।न्याय को बढ़ावा देने वाले और कुप्रबन्ध को रोकने वाले नियम या प्रक्रिया के निर्माण को प्राथमिकता दी जानी चाहिए। प्रक्रिया के नियम न्याय की दासी हैं, न कि उसकी मालकिन।वर्तमान संदर्भ में, सख्त व्याख्या न्याय को पराजित करेगी।"

14. तथापि, एक विसंगत नोट दिनांकित 4/12/2015 को न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लि. बनाम हिली मल्टीपर्पज कोल्ड स्टोरेज प्राइवेट लिमिटेड, (2015) 16 एससीसी 20.में प्रतिवेदित एक निर्णय द्वारा दिया गया था। तीन विद्वान न्यायाधीशों की पूर्णपीठ ने न्यायमूर्ति मर्चेंट (डॉ.) बनाम श्रीनाथ चतुर्वेदी, (2002) 6 एस. सी. सी. 635 के निर्णय को पुनर्जीवित किया। न्यायमूर्ति मर्चेंट (ऊपर) को कैलाश (ऊपर) में निम्नलिखित रूप में प्रतिष्ठित किया गयाः

> "38. दूसरी ओर, प्रतिवादी के विद्वत वकील ने तीन न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया न्यायमूर्ति मर्चेंट (डॉ.) बनाम श्रीनाथ चतुर्वेदी [(2002) 6 एससीसी 635], जिसमें हम सीपीसी के आदेश 8 नियम 1 के लिए उसके पैरा 14 और 15 द्वारा किए गए एक संदर्भ को पाते हैं और न्यायालय ने कहा है कि कानून के आदेश का सख्ती से पालन किया जाना आवश्यक है। फैसले के सावधानीपूर्वक पढ़ने से पता चलता है कि सीपीसी के आदेश 8 के नियम 1 के प्रावधान सीधे न्यायालय के समक्ष विचार के लिए नहीं थे और उस हद तक न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियां कठोर हैं। इसके अलावा, टोपलाइन शूज लिमिटेड मामले [(2002) 6 एससीसी 33] में इस न्यायालय के पहले के निर्णय की ओर न्यायालय का ध्यान नहीं आकर्षित किया गया था।"

इस अवलोकन के बावजूद, न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (उपर्युक्त) जे. मर्चेंट (उपर्युक्त) के निर्णय का अनुसरण करते हुए उन्होंने कहाः

> "25. अतः, हमारा यह मत है कि निर्णय न्यायमूर्ति मर्चेंट बनाम श्रीनाथ चतुर्वेदी, (2002) 6 एस. सी. सी. 635) की राय है और इसलिए, हम इस विचार को दोहराते हैं कि जिला मंच विरोधी पक्ष को अपना पक्ष या उत्तर दाखिल करने के लिए 15 दिनों की और अवधि दे सकता है, उससे आगे नहीं।

> 26. न्यायमूर्ति मर्चेंट (पूर्वोक्त) में अधिकथित विधि का अनुसरण करने का एक और कारण है। न्यायमूर्ति मर्चेंट (पूर्वोक्त) का विनिश्चय 2002 में किया गया था, जबकि कैलाश [कैलाश बनाम नन्हूक, (2005) 4 एस. सी. सी. 480] का विनिश्चय 2005 में किया गया था। इस न्यायालय द्वारा निर्धारित कानून के अनुसार, कैलाश (पूर्वोक्त) का निर्णय करते समय, इस न्यायालय को न्यायमूर्ति मर्चेंट (पूर्वोक्त) में व्यक्त किए गए विचार का सम्मान करना चाहिए था क्योंकि न्यायमूर्ति मर्चेंट (पूर्वोक्त) में दिया गया निर्णय समय के पहले था। उपर्युक्त कानूनी स्थिति को हम नजरअंदाज नहीं कर सकते और इसलिए हमारा यह मत है कि न्यायमूर्ति मर्चेंट (ऊपर) में व्यक्त विचार का अनुसरण किया जाना चाहिए।"

15. न्यायमूर्ति मर्चेंट (उपर्युक्त) राष्ट्रीय उपभोक्ता विवाद निवारण आयोग के समक्ष दायर की गई एक विविध याचिका से उत्पन्न हुए, जिसमें यह प्रार्थना की गई थी कि कथित चिकित्सा के लिए शिकायत दर्ज की जाए। सिविल न्यायालय द्वारा लापरवाही का निर्णय किया जाना चाहिए, क्योंकि कानून के जटिल प्रश्न उठते हैं। उक्त डॉक्टरों के खिलाफ आपराधिक मुकदमा भी लंबित है। फैसले के पैराग्राफ 4 में अदालत ने कहा कि ऐसे मामलों के संबंध में कुछ दिशा-निर्देश तय करने की जरूरत है, जिन्हें उपभोक्ता फोरम स्वीकार नहीं करेगा। यह देखने के बाद कि शिकायत के निपटान में लगभग नौ साल का अत्यधिक विलंब हुआ था, इस न्यायालय ने महसूस किया कि इस तरह का विलंब शिकायत को अस्वीकार करने और शिकायतकर्ता को सिविल न्यायालय में जाने का निर्देश देने का एक आधार नहीं होगा। इस तर्क का जवाब देते हुए कि तथ्य के जटिल प्रश्नों का निर्णय संक्षिप्त कार्यवाही में नहीं किया जा सकता है, इस न्यायालय ने कहा कि त्वरित सुनवाई का मतलब यह नहीं है कि जब तथ्य के प्रश्नों पर कार्रवाई की जानी है और निर्णय लिया जाना है तो न्याय नहीं किया जा सकता है.त्वरित सुनवाई के संदर्भ में न्यायालय ने लिखित कथन प्रस्तुत करने में 45 दिन से अधिक का समय न देने के विधायी अधिदेश के बारे में एक मत व्यक्त किया। वास्तव में, न्यायालय इस तथ्य के प्रति सजग था कि

असंशोधित उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के तहत शिकायतों, अपीलों और पुनरीक्षणों के निपटान के लिए कोई समय सीमा नहीं थी।अतः, इस न्यायालय ने कहाः

> "23. बकाया मामलों को कम करने के लिए और शिकायतों, अपीलों और पुनरीक्षणों को तेजी से और निर्धारित समय के भीतर निपटाने के लिए, हम आशा करते हैं कि राष्ट्रीय आयोग के अध्यक्ष निर्धारित समय के भीतर उचित कार्रवाई करने के लिए सरकार का ध्यान आकर्षित करेंगे और यह सुनिश्चित करेंगे कि अधिनियम का उद्देश्य और उद्देश्य विफल न हो।
>
> xxx xxx xxx
>
> 25. यह आशा की जा सकती है कि राष्ट्रीय आयोग यह सुनिश्चित करेगा कि जिला मंच, राज्य आयोग और राष्ट्रीय आयोग अधिनियम के प्रावधानो द्वारा यथा अनुध्यात कुशलतापूर्वक और शीघ्रता से अपने कृत्यों का निर्वहन कर सकें। राष्ट्रीय आयोग को सभी राज्य आयोग के साथा-साथ अनुदेश निर्गत करने, मामले को सुनने हेतु प्रक्रिया की एकरुपता आदि के मामले मे प्रशासनिक नियत्रंण है इसे यह देखने का प्रशासनिक नियंत्रणाधिका प्राप्त होगा कि राज्य आयोग अथवा जिला आयोग के कार्यो एवं उद्देश्य की प्राप्ति हेतु प्रक्रिया के तहत उसका निवर्हन किया जा रहा है जो कि इस अधिनियम मे निहित है"

न्यायालय ने इसके बाद उपभोक्ता संरक्षण (संशोधन) विधेयक, 2002 का उल्लेख किया, जिसमें अधिनियम की धारा 13 में उप-धारा (3-ए) को शामिल करने की परिकल्पना की गई थी, जो इस प्रकार हैः

> "30. ......
>
> “13. (3-ए) प्रत्येक शिकायत पर शीघ्रता से सुनवाई की जाएगी। जहां तक संभव हो सकेगा और यह विनिश्चित करने का प्रयास किया

जाएगा कि जहां शिकायत के लिए वस्तुओं के विश्लेषण या परीक्षण की आवश्यकता नहीं है वहां विरोधी पक्ष द्वारा नोटिस की प्राप्ति की तारीख से तीन महीने की अवधि के भीतर और पांच महीने के भीतर यदि इसके लिए वस्तुओं के विश्लेषण या परीक्षण की आवश्यकता हैः

परंतु यह तब जवकि कोई स्थगन सामान्यतः मंजूर नहीं किया जाएगा। जब तक पर्याप्त कारण नहीं दिखाया जाता है और स्थगन की मंजूरी के कारणों को फोरम द्वारा लिखित में दर्ज नहीं किया जाता हैः

परंतु यह और कि जिला मंच ऐसा करेगा कि इस अधिनियम के अधीन बनाए गए विनियमों में उपबंधित किया जा सकता है। स्थगन के कारण होने वाले खर्चों के बारे में आदेश”

(मुल में जोर देते)

31. उपर्युक्त खंड की शब्दावली से यह स्पष्ट होता है कि जिला मंच या आयोगों को शिकायतों का यथासंभव तीन महीने के निर्धारित समय के भीतर निपटान करने के लिए विधायी अधिदेश दिया गया है। विरोधी पक्षकार को शिकायत प्राप्त होने की तारीख से 30 दिनों के भीतर अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करना होगा और आयोग अपना प्रतिवेदन फाइल करने के लिए कुछ अपरिहार्य कारणों से अधिक से अधिक 15 दिनों का समय दे सकता है।"

अतः न्यायालय इस तथ्य के प्रति सजग था कि तीन माह की समय सीमा का पालन न करने के लिए कोई परिणाम विहित नहीं किया गया है। इसके परिणामस्वरूप उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 के तहत कार्यवाहियों के निपटान में देरी से बचने के लिए कुछ निर्देशों के साथ मामले का निपटान किया गया।

16. इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि जे. जे. मर्चेंट (पूर्वोक्त) में इस बारे में कोई केंद्रित तर्क नहीं था कि क्या उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 13 (2)

(क) के उपबंधों को निर्देशिका अभिनिर्धारित किया जा सकता है क्योंकि 45 दिनों के बाद लिखित कथन फाइल करने के लिए कोई परिणाम का उपबंध नहीं किया गया था। वास्तव में, जे. जे. मर्चेंट (उपर्युक्त) की सुनवाई कर रही न्यायपीठ के समक्ष भी इस न्यायालय के टॉपलाइन शूज (उपर्युक्त) के निर्णय का उल्लेख नहीं किया गया था।

17. मामले के इस दृष्टिकोण में, इस बात की सराहना करना थोड़ा कठिन है कि कैलाश (पूर्वोक्त) में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ को न्यायमूर्ति मर्चेंट (पूर्वोक्त) में सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 8 के नियम 1 के कठोर सिद्धांत का सम्मान करना चाहिए था। दुर्भाग्यवश, न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड (उपर्युक्त) में जो छूट गया वह कैलाश (उपर्युक्त) का पैरा 38 है जिसे यहां ऊपर उद्धृत किया गया है। तथ्य यह है कि टॉपलाइन शूज (ऊपर) न्यायमूर्ति मर्चेंट (पूर्वोक्त) में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ, से पहले उद्धृत नहीं किया गया था जैसा कि कैलाश (पूर्वोक्त) के पैरा 38 में अभिनिर्धारित किया गया है, उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम, 1986 की धारा 13 (2) (क) को अनिवार्य मानते हुए उपरोक्त निर्णय को कमजोर बना देगा। पहले के निर्णय को उन कारणों को विचलित किए बिना अस्वीकार नहीं किया जा सकता है जिन पर वह आधारित है। न्यायमूर्ति मर्चेंट (उपर्युक्त) 'टॉपलाइन शूज' (उपर्युक्त) अनुपात से संबंधित नहीं है-अर्थात् यह कि 15 दिनों की विस्तारित अवधि से अधिक होने पर कोई दंडात्मक परिणाम का उपबंध नहीं किया गया था और इसलिए, दावेदार के पक्ष में कोई ठोस अधिकार प्रोद्भूत नहीं हुआ था और यह कि अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों के कथन में यह भी उपबंध किया गया था कि प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए। न्यू इंडिया एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड में निर्णय (उपर्युक्त) उन्होंने कैलाश (पूर्वोक्त) के पैरा 38 को संदर्भित नहीं किया था और न ही इस बात की सराहना की थी कि न्यायमूर्ति मर्चेंट (पूर्वोक्त) को इस आधार पर सही ढंग से अलग किया गया था कि सीपीसी का आदेश 8 नियम 1 सीधे न्यायमूर्ति मर्चेंट (पूर्वोक्त) में विचार के लिए उत्पन्न नहीं हुआ था। न्यायमूर्ति मर्चेंट (उपर्युक्त) के पैराग्राफ 14 और 15 में सीपीसी के आदेश 8 के नियम 1, पर टिप्पणियां उचित रूप से अभिनिर्धारित की गई थीं और इसलिए कैलाश की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ (उपर्युक्त) पर बाध्यकारी नहीं थीं। जहां तक कैलाश (उपर्युक्त) का संबंध है, यह सीपीसी के

आदेश 8 नियम 1 के प्रभाव पर एक बाध्यकारी निर्णय है, जिसके तर्क की पुष्टि सलेम बार एसोसिएशन (उपर्युक्त) में तीन न्यायाधीशों की पीठ द्वारा की गई है।

18. राज्य बनाम एन. एस. ज्ञानेश्वरन, (2013) 3 एस. सी. सी. 594 में यह न्यायालय इस बात से संबंधित कि क्या दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 154 (2) आज्ञापक थी या निर्देशिका। उक्त धारा का पाठ इस प्रकार हैः

> "154. संज्ञेय मामलों में सूचना--
>
> xxx xxx xxx
>
> (2) उप-धारा (1) के तहत दर्ज की गई जानकारी की एक प्रति सूचना देने वाले को तुरंत मुफ्त में दी जाएगी।"

उपबंध में प्रयुक्त भाषा की आज्ञापक प्रकृति के बावजूद, यदि धारा का उल्लंघन किया गया था तो कोई परिणाम नहीं दिया गया था। इस न्यायालय ने ऐसे अनेक निर्णयों का उल्लेख किया जिनमें यह अवधारित करने के लिए परीक्षण अधिकथित किए गए थे कि कोई उपबंध आज्ञापक है या निर्देशिका, और फिर यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 154 (2) निर्देशिका थी।

19. तथापि, श्री त्रिपाठी ने बिखराज जयपुरिया बनाम भारत संघ, (1962) 2 एससीआर 880 के निर्णय पर दृढ़ता से भरोसा किया है। उस मामले में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि भारत सरकार अधिनियम, 1935 की धारा 175 (3) में निहित प्रावधान, जिसमें यह अपेक्षित है कि भारत सरकार की ओर से अनुबंधों को निर्धारित प्रारूप में निष्पादित किया जाएगा, इस तथ्य के बावजूद कि धारा ने अनुपालन नहीं करने के लिए कोई परिणाम निर्धारित नहीं किया था, प्रकृति में अनिवार्य था। इस न्यायालय ने कानून के निर्वचन , 10 वां संस्करण,पृष्ठ 376, मैक्सवेल मे एक अनुदेशात्मक अंश का उल्लेख किया जो निम्न प्रकार है:

> "यह कहा गया है कि यह निर्धारित करने के लिए कोई नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता है कि क्या आदेश को केवल एक निर्देश या

> निर्देश के रूप में माना जाना है, जिसमें इसकी अवहेलना में कोई अमान्य परिणाम शामिल नहीं है, या अनिवार्य के रूप में, अवज्ञा के लिए एक निहित अस्वीकृति के साथ, मौलिक से परे कि यह अधिनियम के दायरे और उद्देश्य पर निर्भर करता है। आम तौर पर यह कहना शायद सही पाया जा सकता है कि निरस्तीकरण अवज्ञा का स्वाभाविक और सामान्य परिणाम है, लेकिन सवाल सुविधा और न्याय के विचारों द्वारा मुख्य रूप से शासित होता है, और जब उस परिणाम में अधिनियम के वास्तविक उद्देश्य और उद्देश्य को बढ़ावा दिए बिना निर्दोष व्यक्तियों को सामान्य असुविधा या अन्याय, या उपेक्षा के दोषी लोगों को लाभ शामिल होगा, तो ऐसे इरादे को विधायिका के लिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जाना चाहिए।विचाराधीन कानून के पूरे दायरे और उद्देश्य पर विचार किया जाना चाहिए।"[1]

तब यह अभिनिर्धारित होता गया कि यह प्रावधान आम जनता के हित में है क्योंकि इस सवाल को विवाद और मुकदमेबाजी के लिए खुला नहीं छोड़ा जाना चाहिए कि क्या राज्य और निजी व्यक्ति के बीच बाध्यकारी अनुबंध किया गया है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि जैसाकि मैक्सवेल (पूर्वोक्त) में अधिकथित है, सुविधा और न्याय के विचार सर्वोपरि हैं और यदि सामान्य असुविधा या अन्याय का परिणाम अधिनियमिति के वास्तविक लक्ष्य और उद्देश्य को बढ़ावा दिए बिना होता है तो उपबंध को निर्देशिका घोषित किया जाना चाहिए।

20. इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि धारा 34 (5) इसका अनुपालन न करने की न्यायालय की शक्ति के बारे में नहीं है। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि प्रावधान प्रक्रियात्मक है, जिसके पीछे उद्देश्य धारा 34 के तहत आवेदनों का तेजी से निपटारा करना है। हर किसी को कैलाश (उपर्युक्त) में अंतर्विष्ट बुद्धिमत्तापूर्ण संप्रेक्षण को याद रखना चाहिए, जहां ऐसे उपबंध का उद्देश्य केवल सुनवाई में तेजी लाना है न कि उसमें बाधा डालना। प्रक्रिया के सभी नियम न्याय की दासी हैं और यदि, न्याय के उद्देश्य

1 बिखराज जयपुरिया बनाम भारत संघ, (1962) 2 एससीआर 880, पैरा 16

को आगे बढ़ाने में, यह स्पष्ट किया जाता है कि ऐसे प्रावधान को निर्देशिका के रूप में माना जाना चाहिए, तो ऐसा ही होगा।

21. सी पी सी की धारा 80 के मामले का लिया जाए। उक्त उपबंध के अधीन प्रिवी काउंसिल और फिर हमारे न्यायालय ने लगातार यह मत व्यक्त किया है कि सरकार के विरुद्ध कोई वाद लिखित सूचना संबंधित पक्षकारों को उक्त धारा द्वारा विहित रीति से परिदत्त किए जाने के दो मास की समाप्ति के पश्चात् तक विधिमान्य रूप से संस्थित नहीं किया जा सकता है।यदि ऐसा वाद या तो ऐसी सूचना के बिना या कथित दो महीने की अवधि समाप्त होने से पहले दायर किया जाता है, तो ऐसे वाद को इस प्रकार खारिज कर दिया जाना चाहिए कि यह विचारणीय नहीं है। इसका कारण बिहारी चौधरी और एक अन्य बनामबिहार राज्य और अन्य, (1984) 2 एससीसी 627, आनन्दपूर्वक निम्न रुप से प्रस्तुत किये गया है:

> "3. ..... जब हम इस धारा की स्कीम की जांच करते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि यह धारा लोक नीति के उपाय के रूप में यह सुनिश्चित करने के उद्देश्य से अधिनियमित की गई है कि सरकार या किसी लोक अधिकारी के विरुद्ध वाद संस्थित किए जाने से पूर्व, सरकार या संबंधित अधिकारी को उस दावे की, जिसके संबंध में वाद फाइल किया जाना प्रस्तावित है, संवीक्षा करने का अवसर दिया जाता है और यदि यह उचित दावा पाया जाता है तो तत्काल कार्रवाई करने और इस प्रकार अनावश्यक मुकदमेबाजी से बचने और उस व्यक्ति को, जिसने सूचना जारी की है, प्रभावित किए बिना दावे को निपटाने के द्वारा सार्वजनिक समय और धन की बचत करने का अवसर दिया जाता है। निजी पक्षों के विपरीत, सरकार से नोटिस द्वारा सबसे वस्तुनिष्ठ तरीके से कवर इस मामले पर विचार करने की उम्मीद है, ऐसी कानूनी सलाह प्राप्त करने के बाद जो वे उचित समझते है और- इस धारा द्वारा अनुज्ञात दो माह की अवधि के भीतर इस बारे में निर्णय लेगा कि क्या दावा न्यायसंगत और युक्तियुक्त है और विचारित वाद को शीघ्र बातचीत

> और समझौता द्वारा टाला जाना चाहिए या क्या दावे को दायर किए जाने पर वाद का लड़ करके उसका विरोध किया जाना चाहिए। इस धारा में निहित आज्ञापक उपबंध में स्पष्ट रूप से एक लोक प्रयोजन अंतर्निहित है जिसमें प्रस्तावित वाद का ब्यौरा निर्धारित करते हुए सूचना जारी करने पर जोर दिया गया है और सरकार या लोक अधिकारी को उनके विरुद्ध वाद दायर किए जाने से पहले दो माह का समय दिया गया है। इस धारा का उद्देश्य न्याय को आगे बढ़ाना और अनावश्यक मुकदमेबाजी से जनता की सुरक्षा सुनिश्चित करना है ।"

22. धारा 80, यद्यपि एक प्रक्रियात्मक उपबंध है, को आज्ञापक अभिनिर्धारित किया गया है क्योंकि यह लोकहित में परिकल्पित किया गया है, यह न्याय की प्रगति को बढ़ावा देने के लिए सरकार को उस व्यक्ति को प्रेरित किए बिना जिसने पर्याप्त व्यय और विलंब वाले वाद को दायर करने के लिए नोटिस जारी किया है, न्यायसंगत दावे को संवीक्षा करने और तत्काल कार्रवाई करने का अवसर प्रदान करता है। यह धारा 34 (5) के विपरीत है, जो एक प्रक्रियात्मक प्रावधान है, जिसके उल्लंघन का कोई परिणाम नहीं निकलता है। ऐसे प्रावधान को अनिवार्य मानने से न्याय की प्रगति विफल हो जाएगी क्योंकि यह धारा 34 (5) की अपेक्षाओं का पालन किए बिना दायर किए गए आवेदन को खारिज करने का परिणाम प्रदान करेगा, जिससे निष्पक्षता के तत्व को दफन करके न्याय की प्रक्रिया में बाधा आएगी।

23. तथापि, श्री त्रिपाठी के अनुसार, धारा 34 के अंतर्गत दायर, आवेदन एक पूर्व शर्त है और यदि उक्त आवश्यकता के अनुपालन का समर्थन करने वाले आवेदक द्वारा एक हलफनामे के साथ दूसरे पक्ष को कोई पूर्व सूचना जारी नहीं की जाती है, तो इस तरह के आवेदन को धारा 34 (3) में उल्लिखित 120 दिनों की अवधि के अंत में खारिज कर दिया जाएगा।हमारे द्वारा इसमें ऊपर जो कहा गया है उसके अलावा, अन्यथा भी, धारा 34 के स्पष्ट पठन पर, यह अनुसरण नहीं करता है। धारा 34 (1) इस प्रकार हैः

> "34. माध्यस्थम् पंचाट को अपास्त करने के लिए आवेदन - (1) माध्यस्थम् पंचाट के विरुद्ध न्यायालय का आश्रय केवल उपधारा (2)

> और उपधारा (3) के अनुसार ऐसे पंचाट को अपास्त करने के लिए आवेदन द्वारा लिया जा सकता है।"

इसकी अनुपस्थिति से जो बात स्पष्ट होती है वह है उपधारा (5) का कोई संदर्भ। धारा 34 (1) में केवल यह अपेक्षा की गई है कि पंचाट को अपास्त करने के लिए आवेदन उपधारा (2) और (3) के अनुसार किया जाए। यह, पुनः, इस तथ्य की ओर एक महत्वपूर्ण संकेत है कि विधायी रूप से भी, उप-धारा (5) पूर्व शर्त नहीं है, बल्कि एक प्रक्रियात्मक प्रावधान है जिसका उद्देश्य धारा 34 के तहत आवेदनों पर निर्णय लेने में होने वाली देरी को कम करना है। एक और दिलचस्प बात नोट की जानी चाहिए-वही संशोधन अधिनियम एक नई धारा 29 ए में लाया गया। यह प्रावधान इस प्रकार हैः

> “29 क. माध्यस्थम् पंचाट के लिए समय-सीमा(1) पंचाट माध्यस्थम अधिकरण के निर्देश पर प्रवेश करने की तारीख से बारह मास की अवधि के भीतर किया जाएगा
>
> व्याख्या - में प्रवेश किया माना जाएगा जिस तारीख को मध्यस्थ या सभी मध्यस्थों, जैसा भी मामला अपनी नियुक्ति के बारे में लिखित सूचना प्राप्त कर लिया हैं।
>
> (2) यदि पंचाट माध्यस्थम अधिकरण द्वारा निर्देश किए जाने की तारीख से छह महीने की अवधि के भीतर दिया जाता है, तो माध्यस्थम अधिकरण ऐसी अतिरिक्त फीस प्राप्त करने का हकदार होगा जिससे पक्षकार सहमत हों।
>
> (3) पक्षकार, सहमति से, पंचाट देने के लिए उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अवधि को छह मास से अधिक अवधि के लिए नही बढ़ा सकते हैं।
>
> (4) यदि पंचाट उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अवधि या उपधारा (3) के अधीन विनिर्दिष्ट विस्तारित अवधि के भीतर नहीं दिया जाता है, तो मध्यस्थ (ओं) का अधिदेश तब तक समाप्त हो जाएगा जब तक कि

न्यायालय ने इस प्रकार विनिर्दिष्ट अवधि की समाप्ति से पहले या उसके बाद अवधि को विस्तारित नहीं कर दिया हैः

बशर्ते कि इस उप-धारा के तहत अवधि बढ़ाते समय, यदि अदालत पाती है कि मध्यस्थता न्यायाधिकरण के कारण कार्यवाही में देरी हुई है, तो वह ऐसे विलंब के प्रत्येक महीने के लिए मध्यस्थ (ओं) की फीस में पांच प्रतिशत से अधिक की कमी करने का आदेश दे सकती है।"

24. इस प्रावधान से यह देखा जा सकता है कि धारा 34 (5) और (6) के विपरीत, यदि कोई पंचाट धारा में निहित निर्धारित या विस्तारित अवधि से परे दिया जाता है, तो समाप्त किए जाने वाले मध्यस्थ के जनादेश का परिणाम स्पष्ट रूप से प्रदान किया जाता है। यह प्रावधान धारा 34 (5) और (6) के बिल्कुल विपरीत है, जहां, जैसा कि इसमें ऊपर बताया गया है, यदि धारा 34 के तहत आवेदन पर निर्णय लेने की अवधि बीत गई है, तो कोई परिणाम प्रदान नहीं किया गया है। यह एक और संकेत है कि एक ही संशोधन अधिनियम, जब इसने विभिन्न स्थितियों में समय अवधि प्रदान की, तो इसके अलग-अलग परिणाम हुए।

25. श्री त्रिपाठी ने तर्क दिया कि धारा 34 (5) धारा 34 (6) से स्वतंत्र है और अपने आप में कानून की एक अनिवार्य आवश्यकता है। इसके दो जवाब हैं। पहला यह है कि उपधारा (6) उस तारीख को निर्दिष्ट करती है जिसको उपधारा (5) में निर्दिष्ट सूचना दूसरे पक्षकार को तामील की जाती है। यही कारण है कि आवेदन दाखिल करने की पूर्ववर्ती तारीख को धारा 34 (6) में निर्दिष्ट एक वर्ष की अवधि का प्रारंभिक बिंदु होना चाहिए। अतः धारा 34 (6) की अभिव्यक्त भाषा श्री त्रिपाठी के इस कथन के विरुद्ध है। दूसरा, भले ही उप-धारा (5) का अर्थ उप-धारा (6) से स्वतंत्र प्रावधान के रूप में लगाया जाए, कानून में उसी परिणाम का परिणाम है-अर्थात्, यदि ऐसी पूर्व सूचना जारी नहीं की जाती है तो कोई परिणाम प्रदान नहीं किया जाता है। अतः यह प्रस्तुतिकरण विफल होना चाहिए।

26. अब हम उच्च न्यायालय के कुछ निर्णयों पर आते हैं। पटना[2], केरल[3], हिमाचल प्रदेश[4], दिल्ली[5], और गुवाहाटी[6] के उच्च न्यायालयों ने यह विचार व्यक्त किया है कि धारा 34 (5) प्रकृति में आज्ञापक है। जिस चीज पर दृढ़ता से भरोसा किया जाता है, वह वस्तु है, धारा 34 (5) में प्रयुक्त भाषा की आज्ञापक प्रकृति के साथ-साथ इस उपबंध द्वारा अर्जित किए जाने का प्रयास किया गया है। समान रूप से, धारा 80, सीपीसी के साथ समानता उसी परिणाम तक पहुंचने के लिए खींची गई है। दूसरी ओर, ग्लोबल एविएशन सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड बनाम एयरपोर्ट औथोरिटिज ऑफ इंडिया[7] ने, बम्बई उच्च न्यायालय ने, अपने द्वारा पूछे गए प्रश्न 4 का उत्तर देते हुए, हमारे कुछ निर्णयों के अनुसरण में, अभिनिर्धारित किया कि यह उपबंध निर्देशिका है क्योंकि मुख्यतः विनिर्दिष्ट समय-सीमा के उल्लंघन के लिए कोई परिणाम का उपबंध नहीं किया गया है। बम्बई उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस तर्क का सामना किया कि यदि इस उपबंध का आशय निर्देशिका के रूप में समझा जाए तो उसे महत्व दिया जाएगा, तो निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित कियाः

> "133. जहां तक प्रत्यर्थी के विद्वत वकील की प्रस्तुति का संबंध है कि यदि धारा 34 (5) को निर्देशिका के रूप में माना जाता है, तो संशोधनों का पूरा उद्देश्य प्रस्तुत किया जाएगा, मेरे विचार में, प्रत्यर्थी

---

2 बिहार राज्य भूमि विकास बैंक समिति बनाम बिहार राज्य और अन्य एल. पी. ए. संख्या 1841/2016 सीडब्ल्यूजेसी संख्या 746/2016 [28.10.2016 को निर्णय लिया गया] से उत्पन्न

3 शम्सुद्दीन बनाम श्रीराम ट्रांसपोर्ट फाइनेंस कंपनी लिमिटेड, आरबी संख्या 49/2016 (16.02. 2017) को निर्णय लिया गया

4 माधव हाइटेक इंजीनियर्स प्रा. लिमिटेड बनामकार्यकारी अभियंता और अन्य, ओएमपी (एम) संख्या 48/2016 [24.08.2017 को निर्णय लिया गया]

5 मशीन टूल (इंडिया) लि. बनामस्प्लेंडर बिल्डवेल प्राइवेट लिमिटेड और अन्य, ओ. एम. पी. (काँम) 199-200 (2018(29.05.2018 को निर्णय लिया)

6 भारत संघ और अन्य बनामदुर्गा कृष्ण स्टोर प्राइवेट लिमिटेड आरबी A-1/2018 [31.05.2018 को निर्णय लिया गया]

7 वाणिज्यिक मध्यस्थता याचिका संख्या 434/2017 [21.02.2018 को निर्णय लिया गया]।

> के विद्वत वकील द्वारा की गई इस प्रस्तुति में कोई योग्यता नहीं है.चूंकि उक्त प्रावधान का अनुपालन न करने के मामले में कोई परिणाम नहीं दिया गया है, इसलिए उक्त प्रावधान को अनिवार्य नहीं माना जा सकता है।बम्बई उच्च न्यायालय (मूल पक्ष) नियमों में समुचित नियम अंतःस्थापित करके मामले की कार्यवाही में किसी भी प्रकार की देरी से बचने का उद्देश्य पहले ही पूरा किया जा चुका है।न्यायालय हमेशा याचिकाकर्ता को निर्देश दे सकता है कि वह मामले की सुनवाई से पहले और अंतिम सुनवाई के लिए कागजात और कार्यवाही के साथ नोटिस जारी करे।धारा 34 के तहत पंचाट को चुनौती देने के लिए पक्षकार के निहित अधिकारों को मध्यस्थता याचिका दायर करने से पहले पूर्व नोटिस जारी करने के गैर-अनुपालन के लिए नहीं लिया जा सकता है।"

उपर्युक्त निर्णय का हाल ही में बम्बई[8] और कलकत्ता[9] उच्च न्यायालयों के निर्णय द्वारा अनुपालन किया गया है।

27. हमारी यह राय है कि बम्बई और कलकत्ता उच्च न्यायालयों द्वारा प्रतिपादित दृष्टिकोण विधि की सही स्थिति का प्रतिनिधित्व करता है। तथापि, हम यह जोड़ सकते हैं कि प्रत्येक न्यायालय, जिसमें धारा 34 का आवेदन किया गया है, यह प्रयास करेगा कि, यथास्थिति, आवेदक द्वारा या न्यायालय द्वारा, विरोधी पक्षकार को नोटिस की तामील की तारीख से एक वर्ष की समय-सीमा का पालन किया जाए। यदि धारा 34 (3) में उल्लिखित अवधि बीत जाने के बाद न्यायालय नोटिस जारी करता है तो प्रत्येक न्यायालय उक्त आवेदन दाखिल करने की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर धारा 34 के आवेदन का निपटान करने का प्रयास करेगा, जैसा कि वाणिज्यिक न्यायालय, वाणिज्यिक प्रभाग और उच्च न्यायालय के वाणिज्यिक अपीलीय प्रभाग अधिनियम, 2015 की धारा 14 में

---

8 महाराष्ट्र राज्य सड़क विकास निगम लि. बनाम सिंप्लेक्स गायत्री कंसोर्टियम एवं अन्य; वाणिज्यिक मध्यस्थता याचिका संख्या 453/2017 [19.04.2018 को निर्णय लिया गया]।

9 श्रेई इन्फ्रास्ट्रक्चर फाइनेंस लिमिटेड बनाम कैंडर गुड़गांव टू डेवलपर्स एंड प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड संख्या 346/2018 [12.07.2018 को निर्णय लिया गया]।

प्रावधान किया गया है। यह 2015 के संशोधन अधिनियम द्वारा धारा 13 (6) को जोड़कर प्राप्त किए जाने वाले उद्देश्य को प्रभावी बनाएगा।

28. हम यह भी जोड़ सकते हैं कि वाणिज्यिक न्यायालयों, उच्च न्यायालयों के वाणिज्यिक प्रभाग और वाणिज्यिक अपीलीय प्रभाग अधिनियम, 2015 की धारा 14 के साथ पठित धारा 10 के अंतर्गत आने वाले मामलों में, वाणिज्यिक अपीलीय प्रभाग निर्धारित के अनुसार अपने समक्ष दायर अपीलों को छह महीने के भीतर निपटाने का प्रयास करेगा। जिन अपीलों को इस प्रकार कवर नहीं किया गया है, उनका भी यथासंभव शीघ्रता से निपटारा किया जाएगा, अधिमानतः उस तारीख से, जिस तारीख को अपील दायर की गई है, एक वर्ष के भीतर। चूंकि वर्तमान अपील धारा 34 (5) को निर्देशिका अभिनिर्धारित करने में सफल रही है, इसलिए हमने खंडपीठ के समक्ष लेटर्स पेटेट अपील के श्री राय की अनुरक्षण की वैकल्पिक दलील डिवीजन बेंच के समक्ष लेटर्स पेटेंट अपील पर निर्णय लेना आवश्यक नहीं पाया है।

29. इसके परिणामस्वरूप, अपील मंजूर की जाती है और पटना उच्च न्यायालय का निर्णय अपास्त कर दिया जाता है।वर्तमान मामले में दायर की गई धारा 34 याचिका को अब उसके गुण-दोष के आधार पर निपटाया जाएगा।

(आर. एफ. नरीमन), न्यायमूर्ति

(इंदु मल्होत्रा), न्यायमूर्ति

नई दिल्ली

30 जुलाई, 2018

खण्डन (डिस्क्लेमर):– स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।

विषय सं. 1501 न्यायालय सं. 9 भाग 16

भारत का सर्वोच्च न्यायालय

कार्यवाही का अभिलेख

सिविल अपील संख्या 7314/2018

एसएलपी (सिविल) सं. 4475/2017 से उदभ्त)

बिहार राज्य और अन्य अपीलकर्ता

बनाम

बिहार राज्य भुमि विकास बैंक समिति झारखंड प्रतिवादी

30.07. 2018 आज इस मामले को निर्णय की घोषणा के लिए पुकारा गया था।

अपीलकर्ता के लिए श्री एन. राय, वरिष्ठ अधिवक्ता
श्री गोपाल सिंह, अधिवक्ता
श्री मनीष कुमार, अधिवक्ता
श्री शिवम सिंह, अधिवक्ता
श्री आदित्य रैना, अधिवक्ता
श्री श्रेयस जैन, अधिवक्ता
सुश्री अपराजिता सूद, अधिवक्ता
श्री कुमार मिलिंद, अधिवक्ता

प्रतिवादीगन के लिए श्री जयंत कुमार मेहता, अधिवक्ता

माननीय न्यायमूर्ति रोहिंटन फली नरीमन ने हिज लार्डशिप और माननीय न्यायमूर्ति इंदु मल्होत्रा की पीठ का फैसला सुनाया।

अनुमति याचिका मंजुर की गई

अपील को हस्ताक्षरित रिपोर्ट योग्य निर्णय के संदर्भ में अनुमति दी जाती है।

लंबित आवेदनों, यदि कोई हो, को निष्पादित माना जाएगा।

(शशि सरीन) (सरोज कुमारी गौर)

ए0 आर0 सह-पी0 एस0 साखा पदाधिकारी

(हस्ताक्षरित रिपोर्ट योग्य निर्णय फाइल पर रखा गया है)